3.43/ Aug 2022 /2022-23 /SBD /200
'RESEARCH JOURNEY' International E- Research Journal
Issue - 301 : Multidisciplinary Issue
Impact Factor 6.522 (SJIF) Peer Reviewed Journal
E-ISSN : 2348-7143
August -2022

औपनिवेशिक वानिकी दृष्टिकोण के मद्देनजर घासभूमि की उपेक्षा : एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ. सुभाष भिमराव दोंदे
डेक्कन एज्युकेशन सोसायटी पुणे संलग्न,
किर्ती कॉलेज, दादर (प.) मुंबई - 400 028.
subhash.donde@despune.org
Whatsapp No: 9869556607

16

सारांश :

देश के एक तिहाई क्षेत्र को जैसे-वैसे वनों से ढकना है, चाहे आरंभ या मूल रूप से वहाँ कोई भी प्राकृतिक वनस्पति मौजूद हो या ना हो; और तो और 'घासभूमि'- जैसे महत्वपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र की उपेक्षा करते हुए इसे बंजर-भूमि समझकर वहाँ वन पुनःस्थापन करना यह पारिस्थितिक रूप से अनुपयुक्त या अप्रयोज्य है। एक तिहाई वनक्षेत्र की यह धारणा मूल स्वरूप से दो सदियों से चले आ रहे अवैज्ञानिक औपनिवेशिक वानिकी दृष्टिकोण से प्रेरित है; जिसके तहत प्राकृतिक घास के मैदानों को व्यावसायिक वृक्षारोपण द्वारा वनों में या खनन, ऊष्मीय विद्युत संयंत्र, सिंचाई, सड़क और रेलवे परियोजनाओं जैसी विकास परियोजनाओं के लिए रूपांतरित किया गया है। कई क्षेत्रों में वनीकरण की वृक्ष प्रजातियां आक्रामक और नियंत्रित करने में मुश्किल हो गई हैं। कुल भूमि सतह का एक तिहाई क्षेत्र वनावरण से ढका होना चाहिए यह फ्रांस में उपजी हुई धारणा को अल्जीरिया, अफ्रीका, मेडागास्कर और अंततः ब्रिटिश उपनिवेशी- पूर्वी अफ्रीका और भारत में कार्यान्वित किया गया जो स्वातंत्र्योत्तर सात दशकों तक हमारी वन नीतियों का मूलाधार बनी है। इसके कारण सूखे, गर्म तापमान, भू-क्षरण और जैव विविधता के नुकसान सहित कई तरह की समस्याओं के समाधान के रूप में दो शताब्दियों से अधिक समय तक शुष्क और अर्ध-शुष्क पारिस्थितिक तंत्र तथा घासभूमि क्षेत्रों में वृक्षारोपण या वनीकरण जारी रहा। वनावरण के निश्चित क्षेत्रों के प्रति वृक्षारोपण को प्रोत्साहित करती यह प्रतिबद्धता अव्यवहार्य है; जिसके चलते वन-अधिकार अधिनियम के बावजूद देशज एवं वन निर्भर समाज पर गहरे समाजिक-आर्थिक दुष्प्रभाव की संभावना है। भारत में वाणिज्यिक वृक्षारोपण को बढ़ावा देने और प्रतिपूरक वनीकरण अधिनियम के तहत जिस तरह की नीतियों का पालन किया जाता है, वह वनवासियों और आदिवासी समुदायों को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर रहा है। पुनः स्थापित वनभूमी की तुलना में बेहतर पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएं प्रदान करने के बावजूद घासभूमि औपनिवेशिक वानिकी दृष्टिकोण के मद्देनजर सदियों से उपेक्षित है। इस परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत लेख इस क्षेत्र के विशेषज्ञों एवं अनुसंधान कर्ताओं के संदर्भ सूचीबद्ध प्राथमिक एवं प्रकाशित साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन है।

(**कुंजी शब्द:** घासभूमि, औपनिवेशिक वानिकी, प्रतिपूरक वनीकरण अधिनियम, वन-अधिकार अधिनियम, शुष्क और अर्ध-शुष्क पारिस्थितिक तंत्र)

प्रस्तावना:

घास के मैदान या घासभूमि यह केवल महत्वपूर्ण वन्यजीव आवास नहीं हैं। वे फसल जीन (वंशाणु) के भंडार भी हैं और चारागाहों समुदायों की आजीविका की रीढ़ हैं। ऐतिहासिक रूप से, घास के मैदानों ने मनुष्यों के लिए चावल, गेहूं और बाजरा सहित कई खाद्यान्न उपलब्ध कराए हैं। जलवायु परिवर्तन के समय में कई कृषि फसलें परिवर्तनों का सामना नहीं कर सकती हैं, यह जीन पूल जैव विविधता सुरक्षा जाल के रूप में कार्य करता है, जिसका उपयोग अधिक फसल किस्मों को विकसित करने के लिए किया जा सकता है।[1] विश्व के कई हिस्सों

D. E. Society's Kirti M. Doongursee College of Arts, Science & Commerce Mumbai-400028
Principal
D. E. Society's
Kirti M. Doongursee College
of Arts, Science & Commerce
Dadar (W), Mumbai - 28.

में वन बहाली या पुनःस्थापन के लिए लक्षित बड़े क्षेत्र चारागाह और घास के मैदान से आच्छादित हैं। इन खुले पारिस्थितिक तंत्रों को सार्वजनिक रूप से उपलब्ध एटलस में गलत तरीके से निम्नीकृत वनों के रूप में मानचित्रित किया गया है। वास्तव में घासभूमि प्राचीन, उपजाऊ और जैव वैविध्यपूर्ण हैं और लाखों आजीविका का समर्थन करती हैं। वह कई महत्वपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएं भी प्रदान करती हैं, जो जंगलों में परिवर्तित होने पर नष्ट हो जाएंगी। चारागाह और घास के मैदान दुनिया के कार्बन का एक तिहाई हिस्सा अपनी मिट्टी में संग्रहित करते हैं। वे नदियों को प्रवाहित करते रहते हैं, भूजल का पुनर्भरण (रिचार्ज) करते हैं, और पशुओं और वन्यजीवों के लिए चराई प्रदान करते हैं। घास के मैदान उत्तरोत्तर गर्म और शुष्क जलवायु में कार्बन का भरोसेमंद तरीके से अधिग्रहण करते हैं। वही भौतिक स्थितियां जंगलों को मरने और जंगल की आग के प्रति संवेदनशील बनाती हैं। घास के मैदानों का पुनःस्थापन भी अपेक्षाकृत सस्ता है और दुनिया के सभी बायोम का लाभ-से-लागत अनुपात उच्चतम है। घास के मैदानों में सन्धारणीय पशुचारणता को बढ़ावा देना और बढ़ाना हमारी वर्तमान जलवायु चुनौती के लिए एक महत्वपूर्ण अनुकूलन हो सकता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि घास के मैदान 'वैश्विक स्तर पर जंगलों जितना कार्बन का अधिग्रहण करते हैं और वे जंगलों की तुलना में अधिक लचीला कार्बन- कुंड हैं- सूखे, अत्यधिक गर्मी और जंगल की आग से होने वाली तबाही के संदर्भ में।[2]

इसके बावजूद ग्लोबल पार्टनरशिप ऑन फ़ॉरेस्ट एंड लैंडस्केप रिस्टोरेशन की वेबसाइटों पर स्वस्थ घास के मैदानों और चारागाह को कैसे पुनर्स्थापित किया जाए, इस पर मार्गदर्शन प्रदान करने के बजाय, वन परिदृश्य पुनःस्थापन का मार्गदर्शन करने वाले दस्तावेज़ पूरी तरह से वृक्षों के आवरण को बढ़ाने पर केंद्रित हैं। जिसमें घास-भूमि बायोम का मुश्किल से उल्लेख किया गया है। वन पुनःस्थापन के अंतर्राष्ट्रीय लक्ष्यों को पूरा करने के लिए बड़े पैमाने पर वनीकरण की आवश्यकता है। किन्तु इसके लिए प्रतिभूत की गई लगभग आधी भूमि तेजी से बढ़ने वाली विदेशी प्रजातियों द्वारा वृक्षारोपण के लिए निर्धारित की गई है। विदेशी प्रजातियां उन प्राकृतिक वनस्पतियों की पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं का एक अंश प्रदान करते हैं जिन्हें वे प्रतिस्थापित करते हैं; किन्तु वे प्राकृतिक रूप से पुनर्जीवित वनों की तुलना में 40 गुना कम कार्बन का अधिग्रहण करते हैं। इस तरह स्थानीय पारिस्थितिक संदर्भ के लिए बहुत कम लिहाज़ के साथ, वन पुनःस्थापन की पहल लक्ष्य द्वारा संचालित होती है। वनावरण के निश्चित क्षेत्रों के प्रति यह प्रतिबद्धता पारिस्थितिक रूप से अनुपयुक्त या अप्रयोज्य स्थलों और परिस्थितियों में वृक्षारोपण को प्रोत्साहित करती है। उदाहरण के लिए, मलावी ने कथित तौर पर वन पुनःस्थापन के लिए 45 लाख हेक्टेयर भूमि को प्रतिभूत किया है। यह क्षेत्र इस देश के कुल क्षेत्रफल के एक तिहाई से अधिक है। खाद्य और पानी की असुरक्षा को संबोधित करने और जैव-विविधता का पुनःस्थापन करने के रूप में वृक्षारोपण एवं सामुदायिक वनीकरण को प्रस्तुत किया जाता है। जब की अध्ययनों से पता चला है कि मलावी का वनस्पति प्रवर्धन हजारों वर्षों से ज्यादातर चारागाह और घास के मैदान हैं।[3]

वन पुनःस्थापन स्थानीय पारिस्थितिक संदर्भ की उपेक्षा क्यों करती रहती है? क्या विज्ञान है जो इन विशाल योजनाओं को रेखांकित करता है? ऐतिहासिक अनुसंधान से पता चलता है कि वृक्षारोपण के प्रति सम्मोह या आकर्षण का मूल औपनिवेशिक वानिकी में है। यह सोच सदियों पुराने अप्रमाणित सिद्धांत पर आधारित है कि जंगल बारिश लाते हैं और निर्वनीकरण के कारण क्षेत्र सूख जाते हैं। औपनिवेशिक वानिकी दृष्टिकोण स्थानीय लोगों के द्वारा की गयी वनों की कटाई की जगह पेड़ लगाने के लिए था। अक्सर इस प्रक्रिया में इन लोगों ने अपनी भूमि पर नियंत्रण खो दिया।[4] वन-आवरण के प्रति सदियों से चली आ रही हमारी गलत धारणा का पर्दाफाश करती एक अध्ययन में कहा गया है कि भारत की कुल भूमि का 33 प्रतिशत हिस्सा वनों के दायरे में लाने का लक्ष्य विज्ञान द्वारा समर्थित होने के बजाय औपनिवेशिक खुमार (हैंगओवर) का परिणाम है, जिस नीति के कारण वन निर्भर आदिवासी एवं खानाबदोश चरवाहों के लिए जीवन और अधिक दुःसाध्य या कठिन हो गया है। समकालीन वनीकरण लक्ष्य अक्सर मनमाने लक्ष्य होते हैं जो ठोस विज्ञान के बजाय (नव)

औपनिवेशिक शासन की आदतों में निहित होते हैं। इस अध्ययन में यह भी कहा गया है कि यह पूरी तरह से स्पष्ट नहीं है, क्या बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण या वनीकरण का इन वैन निर्भर समुदायों की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है? किन्तु यह नोट किया गया है कि हाल ही में की गयी समीक्षा से पता चलता है कि इस तरह के प्रयासों का रोजगार, आजीविका और अन्य परस्पर जुड़े हुए सामाजिक प्रभाव के मामले में स्थानीय समुदायों पर महत्वपूर्ण नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।[5]

अध्ययन में इस बात पर भी जोर दिया गया है कि कम से कम दो शताब्दियों के लिए, अनेक पर्यावरणों में उसके 'प्रदर्शन विफलताओं' के बावजूद, वृक्षारोपण को एक पर्यावरणीय रामबाण इलाज के रूप में सराहा गया है - उन सभी बीमारियों के परिप्रेक्ष्य में- जैसे कि सभ्यता गिरावट, अनावृष्टि या कम वर्षा, गर्म तापमान, मिट्टी का भूक्षरण, और घटती जैव विविधता। 1947 में ब्रिटेन से अपनी स्वतंत्रता के तुरंत बाद, भारत 1952 में अपनी पहली राष्ट्रीय वन नीति लेकर आया, जिसमें भारत की 33 प्रतिशत भूमि को वनों के दायरे में लाने का लक्ष्य था और तब से लक्ष्य जस का तस बना हुआ है। वर्तमान में, भारत की लगभग 21.54 प्रतिशत भूमि, जो लगभग 70 मिलियन हेक्टेयर है, वनों के अधीन है। घास के मैदानों का प्रबंधन वन विभाग द्वारा नहीं किया जाता है, जिनकी रुचि मुख्य रूप से पेड़ों में होती है; कृषि विभाग द्वारा नहीं जो कृषि फसलों में रुचि रखते हैं; न ही पशु चिकित्सा विभाग जो पशुधन से संबंधित है लेकिन वह घास नहीं जिस पर पशुधन निर्भर है। घास के मैदान समुदाय की 'सामान्य' भूमि हैं और किसी की जिम्मेदारी नहीं है। वे उपमहाद्वीप में सबसे अधिक उत्पादक पारिस्थितिक तंत्र हैं, लेकिन वे सभी के हैं, किसी के द्वारा नियंत्रित नहीं हैं, और उनके कोई गॉडफादर नहीं हैं।[6]

परिकल्पना

सभ्यता के भरणपोषण करने के लिए लगभग एक तिहाई वन आवरण की आवश्यकता का गहरा औपनिवेशिक विचार सदियों से हमारी वननीति की बुनियाद है; जो शुष्क और अर्ध-शुष्क पारिस्थितिक तंत्र तथा घासभूमि बायोम की उपेक्षा करते हुए पारिस्थितिक रूप से अनुपयुक्त या अप्रयोज्य वनीकरण द्वारा वन पुनःस्थापन को बढ़ावा देता है।

क्रिया-विधि

प्रस्तुत लेख गुणात्मक विषय-वस्तु विश्लेषण के दायरे में असंरचित और गैर-संख्यात्मक डेटा पर निर्भर रहकर समस्या के सटीक स्वरूप को हल करने के लिए इस क्षेत्र के विशेषज्ञों एवं अनुसंधान कर्ताओं के संदर्भ सूचीबद्ध प्राथमिक एवं प्रकाशित साहित्य या डेटा का समीक्षात्मक अध्ययन है।

विचार विमर्श

हाल के शोध ने इस बात पर प्रकाश डाला है कि पशुचारणता कम से कम मध्य-होलोसीन (नूतनतम काल) के बाद से पारिस्थितिक रूप से उपयुक्त और अनुकूल रही हैं, एक ऐसे समय के दौरान पशुचारणता ने शुष्कीकरण को तेज नहीं किया। किन्तु पारंपरिक चरवाही प्रथाओं में बदलाव आया है। उदाहरण के तौर पर सिक्किम के चरवाहा समुदाय ने भेड़ और बकरियों जैसे छोटे शाकाहारी जीवों की जगह याक को अपनाया हैं। याक जैसे बड़े शाकाहारी जीवों द्वारा रौंदने और उनकी धीमी गति और बड़े काटने (कुतरना) का आकार पहाड़ी ढलानों पर नम घास के मैदानों की संरचना और बायोमास (जैव-भार) को बदल देता है। यह बाद में मिट्टी के अपक्षरण (भू-क्षरण) और भंगुर उच्च ऊंचाई वाले पहाडी पारिस्थितिकी तंत्र के क्षरण का कारण बनता है। एक और उदाहरण में देखा गया कि गुजरात के बन्नी चराई क्षेत्र के मालधारी घास के मैदानों को बनाए रखने के

लिए पारंपरिक घूर्णी चराई की प्रणाली का पालन करते थे। समय के साथ, उन्होंने इस प्रथा को छोड़ दिया और वे मवेशियों से भैंस-पालन में स्थानांतरित हो गए। चूंकि मालधारी पशुपालन की गतिहीन प्रथा को अपना चुके हैं, इसलिए एक सीमित क्षेत्र में लगातार चरने से घास के मैदानों को पुनः स्वस्थ होने के लिए बहुत कम समय मिलता है। इसी तरह पश्चिमी घाट के उच्च ऊंचाई वाले क्षेत्र में अद्वितीय शोला घास के मैदान नीलगिरि तहर (जंगली भेड़ की प्रजाति) के लिए आवास प्रदान करते हैं, जो पश्चिमी घाटों के लिए इस लुप्तप्राय पर्वत खुरदार (ungulate) है। इस आवास का नुकसान नीलगिरि तहर की जनसंख्या में गिरावट के प्रमुख कारणों में से एक है। 1980 के दशक के मध्य में नीलगिरी और ब्लैक वॅट्टल के मोनोकल्चर (एकल कृषि) ने इन पहाड़ी घास के मैदानों के क्षरण को उत्तेजित किया है।[7] पारंपरिक चरवाही प्रथाओं में बदलाव या घासभूमि में एकल कृषि किस्म के वन पुनःस्थापन से इस पारिस्थितिक तंत्र का क्षरण होता है, जो हमारे अज्ञान एवं अनुभवहीनता को दर्शाता है।

इस बात के स्पष्ट प्रमाण है कि सभ्यता के भरणपोषण करने के लिए लगभग एक तिहाई वन आवरण की आवश्यकता का गहरा औपनिवेशिक विचार मुख्य रूप से यूरोपीय लोगों द्वारा औपनिवेशिक काल के दौरान विकसित किया गया था, जो कि उनके शुष्क क्षेत्रों में उनके अनुभवों के बड़े हिस्से पर आधारित था, और फिर अल्जीरिया और भारत जैसी शुष्क एवं अर्ध-शुष्क साम्राज्यवादी व्यवस्थाओं के क्षेत्रों में लागू किया गया था। हालांकि फ्रांस और औपनिवेशिक अल्जीरिया में विकसित और परिष्कृत, *taux de boisement* (वनीकरण दर) की अवधारणा 20 वीं शताब्दी के मध्य तक दुनिया के कई हिस्सों में व्यापक हो गई और भारत में, इसका विशेष रूप से लंबे समय तक चलने वाला और व्यापक प्रभाव पड़ा है जहां इसे व्यापक रूप से जाना जाता है और इसकी सराहना की जाती है। *taux de boisement* को किसी भी देश या क्षेत्र के भीतर 'उचित' जंगल भूमि के प्रतिशत की अवधारणा या वनीकरण / जंगलीपन की दर के रूप मे समझाया जा सकता है।[8]

अध्ययन में कहा गया है, यह आश्चर्यजनक नहीं है कि भारत में तीसरे वन महानिरीक्षक बर्थोल्ड रिबेंट्रोप, ने पूरे भारत में वर्ष 1900 में 30 प्रतिशत *taux de boisement* प्राप्त करने के लिए पुनः वनरोपण का आह्वान किया था। हालाँकि, 1952 में भारत की पहली राष्ट्रीय वन नीति के साथ-साथ 1988 में दूसरी राष्ट्रीय वन नीति में भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 33 प्रतिशत वन-आवरण के तहत प्राप्त करने पर जोर दिया गया था। मौजूदा भारत सरकार का पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय देश की तीसरी राष्ट्रीय वन नीति का मसौदा लेकर आया है, जिसमें भी 33 प्रतिशत लक्ष्य के बारे बताया गया है, लेकिन इसे अभी तक अंतिम रूप नहीं दिया गया है। भारत में, अध्ययन में कहा गया है, 33 प्रतिशत वन-आवरण का लक्ष्य एक वैचारिक भूत बन गया, जिसने वन नीति निर्माताओं की क्रमिक पीढ़ियों को प्रेतबाधित किया, जिनके लक्ष्य विविध हो सकते थे - 1952 में इमारती लकड़ी की अर्थव्यवस्था, 1988 में आजीविका को बढ़ावा देना और जलवायु नियंत्रण में 2011 - लेकिन जिनके तंत्र दोहराए जाने वाली मजबूरी के एक अव्यवस्थित रूप का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो शुष्क और अर्ध-शुष्क पारिस्थितिक तंत्र और स्थानीय समुदायों पर बार-बार लगाए जाते हैं जो उन्हें सबसे अच्छी तरह से जानते हैं।[9]

वैश्विक जलवायु परिवर्तन को संबोधित करने के लिए वृक्षारोपण और वनावरण निश्चित रूप से महत्वपूर्ण हैं लेकिन ख़याली पुलाव और मनमानी या विवेकाधीन लक्ष्य (उदा. 30%), जो बटोरना असंभव साबित हुआ है, एक यथार्थवादी नीति से भी बदतर हैं। तीन वर्षों (2015-18) में, भारत के पर्यावरण मंत्रालय ने पूरे भारत में खनन, ऊष्मीय विद्युत संयंत्र, सिंचाई, सड़क और रेलवे परियोजनाओं जैसी विकास

परियोजनाओं के लिए 20,000 हेक्टेयर से अधिक वन भूमि के दिक्परिवर्तन या पथांतरण को मंजूरी दी है। भारत में वन नौकरशाही द्वारा बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण पर आधारित वनों का विचार एक गलत विचार है। वाणिज्यिक वृक्षारोपण को बढ़ावा देने और प्रतिपूरक वनीकरण अधिनियम के तहत जिस तरह की नीतियों का पालन किया जाता है, वह भारत में देशज वनवासियों और आदिवासी समुदायों को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर रहा है। अंततः, इन पर्यावरणीय नीतियों की विरासत और जिन मिथ्याभिमान पर वे बने हैं, ज्ञान और नीति कार्यान्वयन दोनों के उपनिवेशीकरण से मुक्ती की मांग करते हैं। हमें सभ्यता को बनाए रखने के जवाब तभी मिल सकते हैं, जब हम अपने वनीकरण अलग रख दें और इसके बजाय पर्यावरण और दुनिया के शुष्क क्षेत्रों के स्वदेशी लोगों को ध्यान से सुनें।[10]

जैसा कि प्रकाशित शोध निबन्धों ने उत्तरोत्तर स्पष्ट किया है, की ऐसे शुष्क और अर्ध-शुष्क बायोम में पेड़ लगाना, जो अधिक 'स्वाभाविक रूप से' घास के मैदानों या क्षुप (छोटे पेड़) भूमि का समर्थन करते हैं, आमतौर पर पारिस्थितिक रूप से हानिकारक है। इस तरह के वनरोपण से जल स्तर कम हो जाता है, जल विज्ञान प्रणाली बदल जाती है, धारा प्रवाह कम हो जाता है, मृदा कार्बन भंडारण में कमी आती है, और पोषक तत्वों के चक्र में नकारात्मक परिवर्तन होता है। हालाँकि, इस तरह के वृक्षीय क़ौमपरस्ती से प्रेरित संकीर्ण नीति विकास और कार्यान्वयन को चलाने वाला वृक्षारोपण, यहाँ निर्धारित लंबे बौद्धिक और नीति इतिहास की एक महत्वपूर्ण विरासत है। इसके अलावा, इसके निहितार्थ उत्तर-औपनिवेशिक शुष्क भूमि तक सीमित नहीं हैं; सदियों से पुन:वनरोपण की विचारधारा के पर्यावरणीय परिणामों में से एक, विशेष रूप से, अस्पष्ट सबूतों के बावजूद, जलवायु परिवर्तन शमन के लिए वृक्षारोपण के लिए उत्साह रहा है। यह हाल ही में प्रदर्शित किया गया है कि सभी वानिकी जलवायु परिवर्तन को कम करने में योगदान नहीं करते हैं वास्तव में, कुछ हस्तक्षेप जलवायु परिवर्तन को कम करने के बजाय उसे बढ़ा देते हैं।[11]

वृक्षारोपण के माध्यम से कार्बन प्रच्छादन या अधिग्रहण, अच्छी तरह से चयनित प्रजातियों का उपयोग करके, नकारात्मक उत्सर्जन पैदा कर सकता है और दुनिया के कुछ नमीयुक्त या आर्द्र भागों में जलवायु शमन सेवाओं के रूप में काम कर सकता है। हालाँकि, समस्याएँ, विशेष रूप से दुनिया के सूखे भागों में, तेजी से पहचानी जा रही हैं। उदाहरण के लिए, घास के मैदानों और सवाना जैसे बायोम में, वनीकरण को जैव विविधता, मिट्टी और जल विज्ञान को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने के लिए दिखाया गया है। इसके अलावा, कई अध्ययन भूमि की उपलब्धता और पानी की कमी दोनों के संदर्भ में गंभीर बाधाओं की ओर इशारा करते हैं, जिससे वृक्षारोपण के साथ नकारात्मक उत्सर्जन होता है। इनमें से कुछ अध्ययनों का निष्कर्ष है कि नकारात्मक उत्सर्जन पर निर्भर रहना एक अत्यधिक अनिश्चित रणनीति है। और यह रणनीति आक्रामक उत्सर्जन कटौती का व्यवहार्य विकल्प नहीं है।[12]

हालाँकि, यह मानसिकता अनेक जगहों पर कार्बन प्रच्छादन के नाम पर प्रक्षेत्र-चरागाह के वनीकरण को चला रही है, जिसके बहुत नकारात्मक पर्यावरणीय और सामाजिक प्रभाव होने की संभावना है। प्रक्षेत्र-चरागाह या रेंजलैंड का यह नुकसान परेशान कर रहा है क्योंकि अनुसंधान ने बार-बार प्रदर्शित किया है कि व्यापक पशुचारणता अधिकांश शुष्क भूमि का सबसे पारिस्थितिक रूप से उपयुक्त और संधारणीय उपयोग है। पशुचारणता रोजगार और आय के अवसर प्रदान करने और ग्रामीण गरीबों को पोषण की आपूर्ति करने के मामले में विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देता है; हालाँकि, एक आर्थिक प्रणाली के रूप में इसे लगातार सरकारी नीतियों से खतरा है। कई पारिस्थितिक विज्ञानी दोहराते हैं कि घास के मैदानों की

पारिस्थितिक, जल विज्ञान, आर्थिक और सामाजिक भूमिका को लाखों पशुधन और ग्रामीण लोगों के जीवित रहने के स्रोत के रूप में, मिट्टी और पानी के संरक्षक के रूप में, दुर्लभ वन्यजीव प्रजातियों तथा जैव विविधता के संरक्षक के रूप में पहचानना अनिवार्य है। यह गंभीर चिंता का विषय है कि उपमहाद्वीप में अधिकांश घास के मैदान जैव विविधता, पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं और मानव कल्याण के नुकसान सहित, दूरगामी परिणामों के साथ उचित प्रबंधन की कमी के कारण तेजी से निम्नीकृत हो रहे हैं।[13]

केंद्र सरकार के पास कई वनीकरण कार्यक्रम हैं, जिनमें से एक ग्रीन इंडिया मिशन है, जो देश की जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना के तहत आठ मिशनों में से एक है। 2014 में शुरू किया गया, ग्रीन इंडिया मिशन का व्यापक उद्देश्य वन और वृक्षों के आवरण को पाँच मिलियन (दसलक्ष) हेक्टेयर तक बढ़ाना है, साथ ही 10 वर्षों में अन्य पाँच मिलियन हेक्टेयर वन / गैर-वन भूमि में मौजूदा वन और वृक्षों की गुणवत्ता में वृद्धि करना है। अध्ययन ने तर्क दिया कि ग्रीन इंडिया मिशन की नीतिगत मूल बातें भारत में अपनी स्वतंत्रता के बाद से लागू अधिकांश वन नीतियों से दूर नहीं हैं और इसे औपनिवेशिक विस्तार एवं महिमागान कह सकते है। इन लेखकों का निष्कर्ष है कि हरित भारत के लिए राष्ट्रीय मिशन, एक औपनिवेशिक विरासत का पुनरावृत्ति करता है; जो बढ़ते अनुभवजन्य परीक्षणों के बावजूद मनमाने ढंग से वनीकरण लक्ष्यों को जीवित रहने की अनुमति देता है।

प्रकट रूप से ऐसा प्रतीत होता है वन-आधारित आजीविका में सुधार के उद्देश्य से, इस पहल में भारत में पिछले वानिकी प्रयासों के सभी गुण हैं, जिन्होंने ऐतिहासिक रूप से एक विपरीत भूमिका निभाई है- वन निर्भर आबादी को बेदखल करना या उनका उत्तराधिकार समाप्त करना। यह नोट किया गया कि ग्रीन इंडिया मिशन राजनीतिक रूप से वंचित समुदायों के लिए भूमि अधिकारों का विस्तार करने के हालिया प्रयासों को विफल करने के लिए प्रतीत होता है विशेष रूप से आदिवासी समुदायों को, जो ऐतिहासिक रूप से वनों में अधिवास करते है या जंगल से सटे हुए हैं, उन्हें हाल ही में वन अधिकार अधिनियम- 2006 के तहत उनकी भूमि पर अधिक नियंत्रण दिया गया था।[14] इस अधिनियम के तहत, भूमि का प्रबंधन करने, पेड़ या वन-उपज का जरूरत के हिसाब से इस्तेमाल करने, खेती करने या मवेशीयों को चराने की उनकी क्षमता का विस्तार किया गया जहां वे निरंतर ऐतिहासिक निपटान दिखा सकते थे। वनावरण बढ़ाने के साथ स्थानीय भूमि उपयोग को अधिलेखित करने के लिए राष्ट्रीय मिशन की महत्वाकांक्षा, ऐसे स्थानीय समुदायों के अधिकारों से टकराने की सम्भाव्यता अधिक है।

उपसंहार

यह एक औपनिवेशिक विरासत है- जिस भूमि से अंग्रेज राजस्व उत्पन्न नहीं कर सकते थे, उसे 'बंजर भूमि' माना जाता था, और हम अपने औपनिवेशिक आकाओं द्वारा शुरू की गई विनाशकारी प्रथाओं का पालन करना जारी रखते हैं - सभी भूमि को बाजार के चश्मे से देखते हुए। समकालीन भारतीय वन नीतियां जो औपनिवेशिक अवधारणाओं को आगे बढ़ाती हैं, जरूरी नहीं कि भारतीय वनों की वर्तमान स्थिति में लागू हों, विशेष रूप से वनों में रहने वाले और उन पर निर्भर लोगों के संबंध में। यह चिंता का विषय है कि 30-33 प्रतिशत का वन-आवरण दर लक्ष्य नीतियों को उकसाने की अच्छी संभावना है; जो वनवासियों और आदिवासी लोगों के लिए जीवन को और अधिक कठिन बना सकता हैं, या संभवतः उन्हें वंचित कर सकता हैं और उदाहरण के लिए, पारंपरिक वन या वन उपज आधारित संसाधन तक पहुंच सीमित कर सकता हैं- जिस पर वे भरोसा करते हैं। इस पर अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है। वैश्विक प्रयासों और वित्त पोषण के मार्गदर्शन के लिए वन परिदृश्य पुनःस्थापन एक शक्तिशाली साधन बन गया है। इसके समर्थकों की जिम्मेदारी है कि यह

सुनिश्चित करें कि ढांचा वैज्ञानिक रूप से मजबूत हो। पेड़ लगाने के लिए महत्वाकांक्षी किन्तु पारिस्थितिक रूप से त्रुटिपूर्ण लक्ष्य निर्धारित करने के बजाय, स्थानीय सामाजिक और पारिस्थितिक संदर्भों में परिदृश्य पुनःस्थापन उपयुक्त होना चाहिए।

भारत सहित विश्व के अन्य संरक्षित वन क्षेत्र के दायरें में एक दो छुट-पुट हस्तक्षेपों को छोड़ कर, अधिकांश निम्नीकृत घास के मैदानों की बहाली या पुनःस्थापन पर अबतक पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। दुनिया के घास के मैदान - पृथ्वी की कुल भूमि सतह का तकरीबन 40% और कृषि भूमि क्षेत्र का लगभग 69% हिस्सा हैं - जो बहुआयामी कारकों की वजह से चल रहे निम्नीकरण से गंभीर खतरे में हैं। सन्धारणीय विकास एजेंडा में भी घास के मैदानों की बड़े पैमाने पर अनदेखी हो रही हैं; जिसपर विश्व के करोड़ों लोग भोजन, ईंधन, फाइबर, औषधीय उत्पादों के साथ-साथ अपने कई सांस्कृतिक मूल्यों के लिए निर्भर हैं। घासभूमि पारिस्थितिक तंत्र को विभिन्न वन्यजीव प्रजातियों के साथ-साथ मनुष्यों को बनाए रखने के लिए तत्काल प्रबंधन हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. Kala Chandra Prakash (2016) Grasslands in peril *Down to Earth* https://www.downtoearth.org.in/news/forests/amp/grasslands-in-peril-55184
2. Vetter Susanne (2020) The long shadow of colonial forestry is a threat to savannas and grasslands *Down to earth* https://www.google.com/amp/s/www.downtoearth.org.in/blog/wildlife-biodiversity/amp/the-long-shadow-of-colonial-forestry-is-a-threat-to-savannas-and-grasslands-74849
3. *Ibid*
4. *Ibid*
5. Aggarwal Mayank (2019) India's forest cover target influenced by colonial policies rather than scientific basis, says study *Mongabay* https://india.mongabay.com/2019/01/indias-forest-cover-target-influenced-by-colonial-policies-rather-than-scientific-basis-says-study/
6. Banerjee Ananda (2021) India's Disappearing Grasslands *Planet Outlook* https://planet.outlookindia.com/biodiversity/indias-disappearing-grasslands/825
7. Kala Chandra Prakash (2016) *loc.cit.*
8. Davis D.K., and Robbins P. (2018). Ecologies of the colonial present: Pathological forestry from the taux de boisement to civilized plantations. *Environment and Planning E: Nature and Space* Vol. 1 (4): 447–469.
9. *Ibid*
10. Aggarwal Mayank (2019) *loc.cit.*
11. Aggarwal Mayank (2019) *loc.cit.*
12. Aggarwal Mayank (2019) *loc cit.*
13. Banerjee Ananda (2021) *loc.cit.*
14. **दोंदे सुभाष** (2022) **वन गुर्जरों** का हितरक्षक अर्थात वन अधिकार **अधिनियम-** 2006: **वृत्त** का **अध्ययन** *International Journal of Hindi Research* Vol. 8 (3), Pp:35-39. https://www.hindijournal.com/pdf?refno=8-3-17